

योग के विविध आयामों का विवेचनात्मक अध्ययन

कृष्ण कन्हैया¹, डॉ. सोमा दत्ता², डॉ. अर्पित कुमार दुबे³

¹शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग,

²प्रोफेसर एवं संकायाध्यक्ष, दर्शन विभाग,

³सह-प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

^{1,2}मोनाड विश्वविद्यालय, हापुड़, उत्तर प्रदेश

³मोटेराय संस्थान, नई दिल्ली

सारांश: योग और आयुर्वेद हमारे देश की सबसे प्राचीनतम चिकित्सा प्रणाली मानी जाती है। हमारे देश का दर्शन व्यक्ति को 100 वर्षों तक जीवित रहने की प्रेरणा प्रदान करता है। योग का ज्ञान पूर्णतः शारीरिक क्रिया प्रतिक्रिया पर आधारित होती है। वही आयुर्वेद के अर्न्तगत प्राकृतिक जड़ी बूटियों व वृक्षों पर निर्भर है। इस चिकित्सा कि सबसे बड़ी विशिष्टता व उपयोगिता यही है कि इसका हल्का ज्ञान भी हमें रूग्णता की अवस्था में तुरन्त किसी डाक्टर के पास जाने से रोकता है। और स्वतः व्यक्ति अपनी साधारण चिकित्सा करने में समर्थ हो जाता है। उदारहण स्वरूप हमारे घर में रात्रि में एकाएक यदि किसी को कोई पेट दर्द या इसे सम्बन्धित तकलीफ होती है तो तुरन्त ही हम अजवाइन, कालानामक, हींग इत्यादि का उपयोग करते हैं। और इस साधारण प्रयास से हमें दर्द में राहत प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार यदि गैस से सम्बन्धित समस्या में योग पवनमुक्तासन इत्यादि करने पर त्वरित लाभ प्राप्त होता है।

मुख्य शब्द: योग के विविध आयामों का विवेचनात्मक अध्ययन

I. परिचय

योग और आयुर्वेद हमारे देश की सबसे प्राचीनतम चिकित्सा प्रणाली मानी जाती है। हमारे देश का दर्शन व्यक्ति को 100 वर्षों तक जीवित रहने की प्रेरणा प्रदान करता है। योग का ज्ञान पूर्णतः शारीरिक क्रिया प्रतिक्रिया पर आधारित होती है। वही आयुर्वेद के अर्न्तगत प्राकृतिक जड़ी बूटियों व वृक्षों पर निर्भर है। इस चिकित्सा कि सबसे बड़ी विशिष्टता व उपयोगिता यही है कि इसका हल्का ज्ञान भी हमें रूग्णता की अवस्था में तुरन्त किसी डाक्टर के पास जाने से रोकता है। और स्वतः व्यक्ति अपनी साधारण चिकित्सा करने में समर्थ हो जाता है। उदारहण स्वरूप हमारे घर में रात्रि में एकाएक यदि किसी को कोई पेट दर्द या इसे सम्बन्धित तकलीफ होती है तो तुरन्त ही हम अजवाइन, कालानामक, हींग इत्यादि का उपयोग करते हैं। और इस साधारण प्रयास से हमें दर्द में राहत प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार यदि गैस से सम्बन्धित समस्या में योग पवनमुक्तासन इत्यादि करने पर त्वरित लाभ प्राप्त होता है।

इस प्रकार से सामान्य रोगों में यदि हम अपने देश की पुरातन सभ्यता की तरफ वापस आते हैं। तो हमें फौरन ही किसी डाक्टर की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। क्योंकि योग एवं आयुर्वेद के ये नुस्खे अत्यन्त प्रभावशाली व कारगर होते हैं। अतः हमें इनका ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। यह पुस्तक इस विषयोक्त परिपूर्ण सहायता कर सकती है।

1. स्वास्थ्य विधाद :- विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि सृष्टि का यह एक ऐसा विषय जिसकी कामना तो बड़े आलीशान ए. सी. कमरे में बैठने वाले व्यक्ति से लेकर सड़को पर कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति करता है। पर प्राप्त होता है। स्वास्थ्य जागरूक व्यक्ति को ही न की मनोकामना करने वाले व्यक्ति को, क्योंकि स्वास्थ्य कर्म आधारित है। स्वस्थ जीवन जीने की इच्छा सबकी होती है। परन्तु हम इसके लिए प्रयासरत हैं, यह प्रश्न सर्वोपरि है। प्रत्येक के पास इस विषय की चर्चा परिचर्चा करने का समय तो है परन्तु इसके हेतु प्रयास करने का समय नहीं है। सबसे बड़ी बिडम्बना यही है कि सब कुछ है परन्तु समय नहीं जो स्वयं को दे स्वास्थ्य प्राप्त कर सके। हम प्रकृति के साथ छेड़छाड़ खुद को आस्वस्थ कर रहे हैं, और खुद को विकसित समाज का बोलते हुए इसका गुणगान भी करते हैं। जबकि प्राचीन समाज जहाँ हम विज्ञान की उपस्थिति नग्न मानते थे। परन्तु वे प्रकृति के साथ –साथ सामन्जस्य रखते थे। आज हम उन्हीं प्राचीन के विकृत रूप को ही ग्रहण कर रहे हैं। इस लिहाज से प्राचीन ऋषि मुनि किसी वैज्ञानिक से कम नहीं स्वीकार किए जा सकते हैं। प्राचीन और अब में दो बड़े परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन जन स्वास्थ्य को प्राथमिक एवं अन्य गौण मानते थे। और आज इसका उल्टा हो गया है। तो बीमारियों होना ही लाजिमी ही है। हम महर्षियों की वाणी को विस्मृत कर चुके हैं। अतः हमें पूर्ण स्वास्थ्य के लिए पुनः उनका स्मरण करना ही पड़ेगा। योग तो सर्वसुलभ है परन्तु आयुर्वेद के साथ में एक विशिष्टता और जुड़ी है कि जो व्यक्ति का जन्म निवास जहाँ का है उसके हेतु वही की औषधि अधिक कारगर होती है। और क्या देखते हैं कि रहते तो यहाँ पर परन्तु इलाज अमेरिका का पसन्द करते हैं। इस विचारधारा से भी उपर आना उचित होगा। क्योंकि जो औषधि जहाँ की है वही के लिए कारगर मानी जाती है। यही आयुर्वेद का सिद्धान्त भी माना जाता है। आज हम इस विचारधारा व मूल सिद्धान्त का त्याग करके अन्यत्र निर्मित औषधियों का सेवन करते हैं। जो अधिक कारगर यही होती है।

2. रोग के मूल स्रोत :- जीवन परमात्मा का सबसे अमूल्य उपहार है। इस उपहार को स्वरूप रखना किसी दूसरे कि नहीं बल्कि खुद की महती जरूरत व जिम्मेदारी है। स्वरूप विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कहा जाता है कि सब चला जाए तो वापस आ सकता है। परन्तु स्वास्थ्य जाने के बाद प्राप्त करना दुष्कर है। इसी विचार के साथ प्राच्य लोग स्वास्थ्य प्रधान जीवन यापन करते थे। और वर्तमान में अर्थ प्रधान जीवन का बोलबाला है। समय की विशेषता देखिए की जिन कागज के धन को मानव ने निर्मित किया है। मानव ही उसे प्राप्त करने के लिए अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा खोता जा रहा है। यह स्थिति अत्यन्त विचारणीय है। निश्चित ही आज धन से सब कार्य सिद्ध होते हैं। परन्तु धन के लिए ही जीवन का होना निरर्थक है। उसकी भी एक सीमा होना आवश्यक आभाषित हो रहा है। क्योंकि इस धन की प्राप्त के लिए कमरतोड़ मेहनत व असंयमित जीवन भी एक प्रमुख कारण हो सकता है। यह भी रोगों का एक मूल कारण है।

प्रकृति ने मानव शरीर को एक यन्त्र की तरह ही निर्मित किया है। इस यन्त्र के पाँच आधार हैं जिसमें प्रमुख रूप से पाँच तत्वों का समायोजन है पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व। कार्य करने के लिए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा) तथा (हाथ, पैर, मुख, गुदा, लिंग) हैं। इनको नियन्त्रित करने के लिए मन भी है। बुद्धि व अहंकार इसके स्वभाव स्वरूप स्थापित हैं। इनसे संतुष्टि जीवात्मा भी है। जिसके दम पर शरीर है।

जीवन का प्रमुख कार्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो केवल मात्र ग्रन्थों का श्रृंगार बनकर रह गया है। प्रत्येक व्यक्ति की महती कामना तो सही है कि वह स्वस्थ रहे पर उसके निर्मित वह श्रम से बचना चाहता है। यह विचार व चिन्तन वर्तमान का चलन बनता जा रहा है। लोगों के अन्दर विषय वस्तु की चर्चा परिचर्चा की जागरूकता बहुत है परन्तु इसके निर्मित कर्म शून्यता

दिखाई पड़ती है। इस विचार धारा से ऊपर आने की बहुत अधिक आवश्यकता है। क्योंकि स्वास्थ्य के बिना जीवन व्यर्थ है। निरोगी व्यक्ति रूखा सूखा ग्रहण करके भी संतुष्ट रह सकता है। जबकि रोगी व्यक्ति के लिए छप्पन प्रकार के पकवान भी बेकार ही है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रोगों के मूल में एक विचार अवतरित होता है। कि मिथ्या आहार – विहार ही इनकी जड़ आभाषित होती है। अस्तु पूर्व शारीरिक व मानसिक वेग व प्रयास से इस स्वास्थ्य को प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। हमे अपने आहार – विहार व विचार पर चिन्तन अवश्य करना चाहिए। एक जैसी उत्तम ऊर्जावान दिनचर्या धारण करनी चाहिए। जहाँ अनियमितता का अभाव हो। क्यो यह अनियमितता का अभाव हो। क्यो यह अनियमितता ही हमे कण बनाती है।

3. प्राकृतिक कण अनुसरण :- स्वास्थ्य रहना भी वर्तमान में एक कला का रूप धारण कर चुका है। अतएव स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्राकृतिक नियमों का परिपूर्ण रूप यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्राकृतिक नियमों का परिपूर्ण रूप से पालन किया जाए उदाहरण स्वरूप आलस्य का त्याग कर प्रातः सूर्योदय पूर्व शयन व निन्द्रा का परित्याग करना। शौचादि शुद्धता को शरीर में स्थापित करना। समुचित व्यायाम की अनिवार्यता एवं समय पर आहार व शयन ही इस स्वास्थ्य की धुरि मानी जाती है। व्यायामो का समुचित ज्ञान भी अत्यन्त अनिवार्य है। ऋतु परिवर्तन के साथ – साथ व्यायाम की वही शीत ऋतु में इसकी अधिकता सुनियोजित करना बहुत लाभकारी होता है। इसी जगह जो व्यक्ति ऋतु के अनुकूल व्यायाम का अनुसरण नहीं करता वह बीमारियों का अनायास ही शिकार हो जाता है। भोजन की इस निर्मित अपनी अलग उपादेयता है। अतः इसे अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण करना चाहिए। शरीर में निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों को रोकने का प्रयास नहीं करना चाहिए। इन्हे अनायास रोकने दकी प्रक्रिया शरीर से रोगों का आश्रय स्थल बना देती है।

4. आयुर्वेद व योग चिकित्सा की :- योग एवं आयुर्वेद हजारों वर्ष प्राचीन परम्परा है। जिसका अनुसरण करके प्राचीन मानव जंगलों में भी सुखी व निरोग रह लेता था। आज भी इस आयुर्वेद की शक्ति को इसी बात से जाना जा सकता है। कि ग्रामीण अंचलों में सामान्य बीमारियों को घरेलू नुस्खों से ही ठीक कर लेते हैं। आज मानव ज्ञान विज्ञान की चरम सीमा तक जा पहुँचा है। अनेकानेक औषधियों की खोज की जा चुकी है। परन्तु ये सब मिलकर भी मानव मात्र को स्वास्थ्य नहीं रख पा रही है। अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बीमार होने के बाद चिकित्सा का दौर जारी है। जबकि पहले की पद्धतियों में ऐसा कदापि नहीं था। शरीर को बीमार होने के पूर्व ही निरोग रखा जाएगा। योग एवं आयुर्वेद ने मिलकर ऐसी पटकथा स्थापित की है जो अत्यन्त जनकल्याणकारी है।

5. रोग एवं हमारा स्वास्थ्य :- स्वास्थ्य वह धन है। जो हमे हमारे प्रयास व परिश्रम से प्राप्त होता है। कोई भी चिकित्सक व वैद्य यह हमे प्रदान नहीं कर सकता। इसके लिए हमे ही अपने अन्दर चेतना व ऊर्जा का पूर्ण जागरण करना पड़ेगा। जब तक प्रयास अभीभूत नहीं होंगे परिणाम नहीं प्राप्त होगा।

जब हम स्वरूप की परिचर्या करते हैं। तो उसमें केवल मात्र तन की ही बात करते हैं। यह निश्चित ही उसका एक अंग या भाग मात्र है। क्योंकि पूर्णता के पर्याय में तन व मन दोनों आते हैं। जब तक इनकी एकरूपता नहीं आती शरीर रोग जनित होते हैं। इनकी एकरूपता ही रोग को समाप्त करती है। इस संसार में दुःख का भी राही प्रथम कारण प्रकाशित होता है। मन धरा का सबसे शक्तिशाली पक्ष है इसको नियन्त्रित करना अत्यन्त आवश्यक है।

जीवन में सुख: दुख संताप इत्यादि सब होते तो शरीर में है। परन्तु इनका स्वानुभूत तो सर्वप्रथम मन में होता है। मानसिक शक्ति की अनुभूति इसी बात से कर सकते हैं। कि कितनी भी बड़ी बीमारी को दृढ़ संकल्प व मानसिक शक्ति से ही परास्त कर सकते हैं। इस हेतु स्वास्थ्य की प्राप्ति में मानसिक शक्ति की भी महत्ता भूमिका है। प्रत्येक चिकित्सक केवल मात्र शारीरिक रोगों व लक्षणों की चिकित्सा करता है। इसके इतर मन की कोई चिकित्सा नहीं की जाती। यही बड़ी दुविधा व सबसे बड़ा कारण है। जिससे हमें स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो पाता है। मन की ऊर्जा का अनुभव इसी बात से कर सकते हैं। कि महगी दवाई भी वही कार्य करती है। जो सस्ती दवा, परन्तु मानसिक दशा ऐसी होती है। कि हमें महगी दवा की लाभ देती। इधर इसके यदि हम यह मनोदशा निर्मित कर ले कि सस्ती दवा भी हमें लाभ पहुंचायेगी तो निश्चित ही वह सस्ती दवा उतनी ही कारगर होगी जितनी यह महगी दवा। अस्तु यहाँ यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि शरीर व मन कि एकरूपता बहुत आवश्यक है। इसी आवश्यकता के हेतु योग इनको एकरूपता प्रदान करता है। यही वह कारण है जिसके चलते प्राचीन काल खण्ड में इसे चिकित्सा का पक्ष नहीं प्रतीक जीवन जीने कि कला के रूप में दैनिक दिनचर्या का अंग बनाए थी।

6. त्रि – दोष से रोग की उत्पत्ति :- योग एवं आयुर्वेद वर्तमान चिकित्सा से शरीर की रचना स्वीकार करता है। इन दोनों के मध्य में सबसे बड़ा छन्द यह है कि आयुर्वेद व योग रोग की पूर्ण चिकित्सा करता है। वही एलोपैथ (वर्तमान चिकित्सा पद्धति) रोग के लक्षणों कि चिकित्सा पर जोर देता है। उदाहरण स्वरूप यदि किसी को सर्दी हो गयी तो आयुर्वेद व योग उसकी मूल चिकित्सा करते हैं। वही वर्तमान चिकित्सा सर्दी के लक्षणों का उपचार करते हैं।

आयुर्वेद व योग शरीर की रचना पाँच तत्वों से मानते हैं। उनके अनुसार शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से निर्मित होता है। इस अनुसार पृथ्वी तत्व ठोस का अनुसरण है वही तरल – जल का वायु गैस का तो अग्नि तत्व वस्तु परिवर्तन का तथा शेष समस्त पदार्थ आकाश तत्व में ही समहित होते हैं। जो शरीर निर्माण में सहायक होते हैं।

आयुर्वेद में तीन संघटकों का वर्णन हमें प्राप्त होता है। जिसके अन्तर्गत दोष, धातु एवं मल आते हैं जो इन्हीं पाँच तत्वों से निर्मित माने जाते हैं। ये तीनों अपनी संचालन गति तत्व के माध्यम से ही करते हैं। हमारे शरीर में मुख्यतया तीन दोष पाए जाते हैं। जिनमें वात, कफ, पित्त प्रमुख हैं। दोष को अंग्रेजी भाषा में डिसकॉन्शन कहते हैं। यह दोष का ही अपभ्रंश है। अतः दोष शब्द से आशय होता है। अशुद्धता, कमी अतिचार, या खराबी। अतः आयुर्वेद में दोष की साम्यावस्था ही स्वास्थ्य है। इसके साथ ही जब ये दोष असन्तुलित होते हैं। तब व्यक्ति रावण हो जाता है।

7. वात :- प्रमुख रूप से वात शरीर में कार्यपालक की भूमिका का निर्वाह करता है। वस्तुतः यह दोष गतिशील होता है। अस्तु यह एक प्रकार की ऊर्जा ही है। यह संचार का कार्य करता है। अतः ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभूत विषय को यह मस्तिक तक पहुँचाता है। आयुर्वेद में महर्षि चरक ने एवं योग में इसे पाँच प्रकार की स्वीकार की गयी है।

1. प्राण :- छाती और श्वसन से सम्बन्धित।
2. व्यान – हृदय के कार्यों से सम्बन्धित
3. उदान – भोजन नली (आहार नाल) से सम्बन्धित।
4. समान – आतों से सम्बन्धित है।
5. अपान – गुदा व मूत्र प्रणाली से सम्बन्धित है।

इस प्रकार से वायु एवं आकाश से निर्मित बात तत्व हवका व शुष्क ही होता है। यदि असमय यह कुषित हो जाए तो यह वात जनित रोगों के जन्म का कारण बनती है। जिसे हम गैस से सम्बन्धित रोगों के नाम सभी जानते हैं।

इस दोष की पहचान चमड़ी खुरक होना, क्यास जमना एवं पैरो में बिबाइया इत्यादि फटने से पहचाना जा सकता है। इसके अनेक लक्षण अनिन्द्रा अपच इत्यादि वातावरण के अनुसार स्वतः प्रकट होने लगते हैं। यदि हम समय पर इसकी पहचान कर लेते हैं। और योग आयुर्वेद का सहारा लेते हैं। तो इस दोष से बचा जा सकता है।

8. पित्त :- पित्त वस्तुतः भोजन के पाचन में हमारी सहायता करते हैं। यह शरीर में समस्त प्रकार के रूप परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होते हैं। एक मान्यता के अनुसार पित्त दोष जनित व्यक्ति अधिक समझदार भी होते हैं। क्योंकि इसका सम्बन्ध मस्तिष्क से भी होता है।

यह दोष भय, अक्खडपन, क्रोध सहित मनोविकारों को भी नियन्त्रित करता है। यह वास्तविकता में बृद्धि विवेक को भी तीव्र करता है। व्यक्ति की त्वाचा में आया, चकम, व निखार के लिए यही उत्तरदायी होता है। इसी की उपस्थिति भूख प्यास का अनुभव करवाती है।

शरीर में इसके कुचित होने की दशा में त्वाचा के रोग, अतिसार, वमन (उतरी) एवं सिरदर्द इत्यादि लक्षण कारण के रूप में रात्रि जागरण, अधिक चिकनाई युक्त व तीखा मसालेदार आहार उत्तरदायी होता है। इसी के चलते अनेक प्रकार के रोग अवतरित होते हैं। योग चिकित्सा एवं आयुर्वेद चिकित्सा सहित वैकल्पिक चिकित्सा द्वारा इसको नियंत्रित किया जा सकता है।

9. कफ :- कफ मानव शरीर को ऊर्जा व शक्ति देने का कार्य करता है। यह शरीर को सिग्धता प्रदान करता है। कफ पित्त का स्वरूपतया घोर विरोधी माना जाता है। जहाँ एक के उग्र होने पर दूसरा स्वतः शान्त हो जाता है। क्योंकि इसके धैर्य का गुण पाया जाता है। अतः इसकी उपस्थिति व्यक्ति को यह गुण स्वतः प्रदान करती है। तथा शारीरिक सूक्ष्म कोशिकाओं के निर्माण में भी इसकी महती भूमिका होती है। तथा हड्डियों के निर्माण में भी अपनी सहायता प्रदान होती है। वस्तुतः यह रोग प्रतिरोध के साथ – साथ मानसिक शक्ति को भी बढ़ाने का कार्य करता है। साथ ही साथ यौन शक्ति में वृद्धि कारक है। इसके कुपित होने लक्षणों में वस्तुतः मीठा, खट्टा व नमकीन भोजन है। इनकी अधिक मात्रा ही इसे कुपित कर रोगों को आमन्त्रित करती है। इसके परिणाम स्वरूप शारीरिक पीडा, ज्वर, व खासी इत्यादि आदि हैं। जिस व्यक्ति में इसकी अधिकता बढ़ती है। वह व्यक्ति मोटा, व सुस्त हो जाता है।

अतः शरीर को शान्त स्थिर निरोग रखने के हेतु इन तीनों दोषों की साम्यावस्था का होना अत्यन्त, अनिवार्य है। समग्र स्वास्थ्य की परिपूर्ण परिकल्पना इन तीनों के सन्तुलन पर ही आश्रित मानी जाती है। अतः हमें निश्चित ही इनकी सन्तुलन की दिशा में गमन करना चाहिए। इस प्रकार से वायु एवं आकाश से निर्मित बात तत्व शुष्क ही होता है। यदि असमय यह कुषित हो जाए तो यह वात जनित रोगों के जन्म का कारण बनती है। जिसे हम गैस से सम्बन्धित रोगों के नाम सभी जानते हैं।

इस दोष की पहचान चमड़ी होना, क्यास जमना एवं पैरो में बिबाइया इत्यादि फटने से पहचाना जा सकता है। इसके अनेक लक्षण अनिन्द्रा अपच इत्यादि वातावरण के अनुसार स्वतः प्रकट होने लगते हैं। यदि हम समय पर इसकी पहचान कर लेते हैं। और योग आयुर्वेद का सहारा लेते हैं। तो इस दोष से बचा जा सकता है।

10. उपसंहार :- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्वास्थ्य अमूल्य धन माना जाता है। जिसे प्राप्त करना मानव मात्र का परम कर्तव्य एवं धन होना समय की सबसे बड़ी मांग है। इसको दृष्टिगत रखते हुए स्वास्थ्य की प्राप्ति का एक दो या तीन आयामों पर ध्यान केन्द्रित करना समग्र स्वास्थ्य संकल्पना के साल एक प्रकार का छलावा आभाषित होता है। इसी पर्याय में इस तत्त्व का शामिल होना अति आवश्यक हो जाता है। कि इसके समस्त आयामों का ध्यान रखा जाए। साथ ही साथ सर्वसूत्र एवं सर्वोपयोगी आयाम जो हमारी प्राचीन जीवन शैली एवं सभ्यता है, इसका परिपूर्ण रूप से पालन किया जाए। क्योंकि प्रत्येक चिकित्सा पद्धति अपनी विशेषता व गुण रखती है जिसका तुलना करना उचित नहीं है। परन्तु इनमें योग एक ऐसी पद्धति के रूप में स्थापित है जिसके प्रयोग से व्यक्ति रूग्ण ही नहीं पड़ता। और बीमार होता भी है तो उसके शरीर के अन्दर ऐसी क्षमता विकसित हो जाती है जिसके बल पर वह सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कुमार कामाख्या (2007) – योग महाविज्ञान स्टैण्डर्ड पब्लिसर्स नई दिल्ली
2. दौनेरिया डॉ० साधना (2014) पातंजल योगसार मधुलिका प्रकाशन इलाहाबाद
3. गोयन्दका हरिकृष्णदास (सं 2066) योग दर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर
4. आचार्य बालकृष्ण (2007) विज्ञान की कसौटी पर योग, दिव्य प्रकाशन दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट पंतजलि योगपीठ हरिद्वार
5. आचार्य पं शर्मा श्री राम (1998) चिकित्सा पद्धति केविविधि आयाम वागमय – 40 अखंड ज्योति संस्थान मथुरा।
6. आचार्य पं शर्मा श्री राम (1998) साधना पद्धतियों का ज्ञान – विज्ञान पद्धतियों का ज्ञान – विज्ञान वागमय – 4 युगनिर्माण योजना मथुरा।